प्रत्यभिज्ञा दर्शन

1 नामकरण और इतिहास

कश्मीर का अद्वैत शैव दर्शन तीन मुख्य नामों से प्रख्यात है -

प्रत्यभिज्ञा दर्शन - इसे 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' इसलिये कहते हैं कि यह मानता अद्वैत ही है। वह अपने स्वरूप को भूल कर देश-प्राण-बु तादात्म्य स्थापित कर लेता है। अपने सच्चे स्वरूप की (पहचान) से वह परिच्छिन्न, कृत्रिम अहं (आपा) से अद्वैतलाभ करता है।

स्पंदशास्त्र - इसका 'स्पंदशास्त्र' इसलिये नाम पड़ा कि यह सार कि सारे विश्व का उद्भव शिव की शक्ति से ही हुआ है, स्पंदरूपा है।

त्रिक प्रत्यभिज्ञा - इसको त्रिक्दर्शन इसलिये कहते हैं कि इसी का मुख्यतया प्रतिपादन किया गया है:

(1) नर, (2) शिव,

कहीं-कहीं

(1) पशु, (2) पाश और (3) पति, इस प्रकार वस्तुऐं मानी गई हैं। मुख्यार्थ एक ही है।

यह दर्शन अद्वैतपरक है। दुर्वासा और त्र्यंबक इसके आदि प्रचारक माने जाते हैं। इसे 'त्रैयंबक दर्शन' भी कहते हैं। इसके मूल प्रवर्तक, जिन्होंने इसके सिद्धांतों को लिपिबद्ध किया, **आचार्य वसुगुप्त** (काल लगभग 800 ई. शती) थे। क्षेमराज ने 'शिवसूत्र' में कहा है कि भगवान श्रीकंठ ने वसुगुप्त को स्वप्न में आदेश दिया महादेवगिरि के एक शिलाखंड पर शिवसूत्र उतंकित हैं, प्रचार करो। जिस शिला पर ये शिवसूत्र उद्दंकित मिले थे कश्मीर में लोग शिवपल (शिवशिला) कहते हैं। इस की संख्या 77 है। ये ही इस दर्शन के मूल आधार हैं। "स्पंदकारिका" में शिवसूत्रों के सिद्धांतों का प्रतिपादन किया दो शिष्य हुए हुए (1) कल्लट और (2) सोमानंद। "स्पंदासर्वस्व" लिखा और सोमानंद ने "शिवदृष्टि" और 'परातर्ति' लिखी। सोमानंद के पुत्र और शिष्य उत्पलाचार्य (90 दर्शन के प्रख्यात आचार्य माने जाते हैं। इन्होंने 'ईश्वरप्रत्यकि' का प्रणयन किया जो इस दर्शन का प्राणभूत ग्रंथ है। प्रसिद्ध हुआ कि इस दर्शन का नाम ही प्रत्यभिज्ञा पड़ गया ने "सिद्धित्रयी" और "शिवस्तोत्रावली" ग्रंथ लिखे। शिव पराभक्ति का अपूर्व ग्रंथ है।

उत्पल के शिष्य अभिनवगुप्त और लक्ष्मणगुप्त के गुप्त (950-1000 ई.) हुए। अभिनवगुप्त अत्यंत प्रतिभाशाली थे। काव्य, नाट्य, संगीत, दर्शन, तंत्र, मंत्र और योग इनमें पारंगत थे। ध्वन्यालोक पर जो "लोचन" टीका है वह इस मर्मज्ञता का प्रचुर प्रमाण है। भरत के नाटय शास्त्र पर इनका भारती" भाष्य इनके नाट्य और संगीत के ज्ञान का प्रमाण "प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी" इनके दर्शन के अगाध पांडित्य का "मालिनीविजयवार्तिक" इनके आगम के गंभीर ज्ञान का "परमार्थसार" भी इनके दर्शन और साधना के पांडित्य उदाहरण है। 12 भागों में लिखित इनका "तंत्रालोक" दर्शन और योग का वृहत् कोश है। "तंत्रसार" में तंत्रालोक "तंत्रसार" में तंत्रलोक का निचोड़ है।

क्षेमराज (975-1025 ई.) इनके बहुत ही सुयोग्य शिष्य थे। क्षेमराज के निम्नलिखित ग्रंथ प्रसिद्ध हैं : शिवसूत्रविमर्शिनी, स्वच्छंद तंत्र, विज्ञानभैरव और नेत्रतंत्र पर उद्योत टीका, प्रत्यभिज्ञाहृदय स्पंदसंदोह, स्पंदनिर्णय, पराप्रावेशिका, तत्वसंदोह और शिवस्तोत्रावली पर "स्तवचिंतामणि" टीका।

इनके अनंतर प्रत्यभिज्ञादर्शन पर निम्नलिखित और ग्रंथ लिखे गये। उत्पल वैष्णव की "स्पंदप्रदीपिका" भास्कर और वरदराज का "शिवसूत्रवार्तिक", रामकंठ की "स्पंदकारिकाविवृत्ति", योगराज की "परमार्थविवृति" और जयरथ की तंत्रालोक की "विवेक" टीका।

परम तत्व : इस दर्शन की दृष्टि अद्वय या अद्वैत है। परम तत्व द्वैतरहित या अद्वय है। उसे परमेश्वर, परमशिव, चित्परासंवित्, अनुत्तर इत्यादि शब्दों से अभिहित किया गया है।

चित् वह है जो अपने को सब आवरणों से ढककर भी सदा अनावृत बना रहता है, सब परिवर्तनों के भीतर भी सदा परिवर्तनरहित बना रहता है। उसमें प्रमाता प्रमेय, वेदक वेद्य का द्वैत भाव नहीं रहता, क्योंकि उसके अतिरिक्त दूसरा कुछ है ही नहीं।

इसका स्वरूप प्रकाशविमर्शमय है। शांकर वेदांत भी चित् को अद्वैत मानता है, किंतु शांकर वेदांत में चित् केवल प्रकाशस्वरूप है, प्रत्यभिज्ञा दर्शन में वह प्रकाशविमर्शमय है। मणि भी प्रकाशरूप है। केवल प्रकाशरूप कह देने से परमतत्व का निरूपण नहीं हो सकता। त्रिक् या प्रत्यभिज्ञा दर्शन का कहना है कि परम तत्व वह प्रकाश है जिसे अपने प्रकाश का विमर्श भी है। "विमर्श" पारिभाषिक शब्द है। इसका अर्थ है चित् की आत्मचेतना, प्रकाश का आत्मज्ञान, प्रकाश का यह ज्ञान कि "मैं हूँ"। मणि भी स्वयंप्रकाश है, किंतु उसे अपने प्रकाश का ज्ञान नही है। परमतत्व को केवल स्वयंप्रकाश कह देने से काम नहीं चलेगा। प्रत्यभिज्ञा दर्शन का कहना है कि ऐसा प्रकाश जिसे अपना ज्ञान है विमर्शमय है। विमर्श चेतना की चेतना है। क्षेमराज ने विमर्श को "अकृत्रिममाहम इति विस्फुरणम्" (पराप्रावेशिका, पृ.2) स्वाभाविक अहं रूपी स्फुरण कहा है। कृत्रिम अहं हृ "अस्वाभाविक मैं" का ज्ञान वेद्यसापेक्ष है। विमर्श स्वाभाविक अहं का ज्ञान पूर्ण है, वह "पूर्णहीनता" है, क्योंकि समस्त विश्व उसी में है। उससे व्यतिरिक्त कुछ है ही नहीं। क्षेमराज ने कहा है "यदि निर्विमर्श: स्यात् अनीश्वरो जडश्च प्रसज्यते (पराप्रावेशिका, प्र. 2) अर्थात् यदि परम तत्व प्रकाश मात्र होता और विमर्शमय न होता तो वह निरीश्वर और जड़ हो जाता। चित् अपने को चित्शक्ति के रूप में देखता है। चित् का अपने को इस रूप में देखने को ही विमर्श कहते हैं। इसी विमर्श को इस शास्त्र ने पराशक्ति, परावाक्, स्वातंत्र्य, ऐश्वर्य, कर्तृत्व, स्फुरता, सार, हृदय, स्पंद इत्यादि नामों से अभिहित किया है। जब हम कहते हैं कि परमतत्व प्रकाश विमर्शमय है तो उसका अर्थ यह हुआ कि वह चिन्मात्र नहीं है, पराशक्ति भी है।

यह परमतत्व विश्वोत्तीर्ण भी है और विश्वमय भी है। विश्व शिव की ही शक्ति की अभिव्यक्ति है। प्रलयावस्था में यह भक्ति शिव में संहृत रहती है, सृष्टि और स्थिति में यह शक्ति विश्वाकार में व्यक्त रहती है। विश्व परमशिव से अभिन्न है, यह शिव का स्फुरणमात्र है। परमेश्वर

या परमशिव बिना किसी उपादान के, बिना किसी आधार के, अपने स्वातंत्र्य से, अपनी स्वेच्छा से, अपनी ही भित्ति या आधार में विश्व का उन्मोलन करता है। चित्रकार कोई चित्र किसी आधार पर, तूलिका और रंग की सहायता से बनाता है, किंतु इस जगत् चित्र का चित्रकार, आधार, तूलिका, रंग सब कुछ शिव ही है।

परमेश्वर ही मूलतत्व है। यह दर्शन "ईश्वराद्वयवाद" इसीलिये कह–लाता है कि परमेश्वर के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। अज्ञान या माया उससे भिन्न कुछ नहीं है। यह उसी का स्वेच्छापरिगृहीत रूप है। वह अपने स्वातंत्र्य से, अपनी इच्छा से अपने को ढक भी लेता है। और अपनी इच्छा से ही अपने को प्रकट भी करता है।

शांकर वेदांत या ब्रह्मवाद भी अद्वैतवादी है, किंतु ब्रह्मवाद और ईश्वराद्वयवाद में पर्याप्त अंतर है।

ब्रह्मवाद ब्रह्म को निर्गुण, निर्विकार चैतन्य मात्र मानता है। उसके अनुसार ब्रह्म में कर्तृत्व नहीं है, किंतु ईश्वराद्वयवाद के अनुसार परमशिव में स्वातंत्र्य या कर्तृत्व है जिसके द्वारा वह सदा सृष्टि, स्थिति, संहार, अनुग्रह और विलय इन पंचकृत्यों को करता रहता है।

2 परमशिव और विश्व का संबंध

इस दर्शन के अनुसार संवित् या परम शिव का विश्व से संबंध दर्पणबिंबवत् है। जैसे स्वच्छ दर्पण में नगर, वृक्ष इत्यादि पदार्थ प्रतिबिंबित होने पर उससे अभिन्न होते हुए भी उससे भिन्न दिखलाई देता है। इसीलिये इस दर्शन की दृष्टि "आभासवाद" कही जाती है। दर्पण के उदाहरण में एक बात ध्यान में रखनी चाहिए। लोक में बिंब से ही प्रतिबिंब होता हैं, किंतु इस दर्शन में परमेश्वर में विश्व प्रतिबिंब होता रहता है। इस दर्शन की दृष्टि को स्वातंत्र्यवाद भी कहते है।

3 परमशिव की शक्तियाँ

परम शिव की अनंत शक्तियाँ हैं, किंतु मुख्यत: पाँच शक्तियाँ हैं ह्र चित्, आनंद, इच्छा, ज्ञान, क्रिया। चित् का स्वभाव आत्मप्रकाशन है। स्वातंत्र्य को आनंद शक्ति कहते हैं। वस्तुत: चित् और आनंद परमशिव के स्वरूप ही हैं। अपने को सर्वथा स्वतंत्र और इच्छासंपन्न मानना इच्छाशक्ति है। इसी से सृष्टि का संकल्प होता है। वेद्य की ओर उन्मुखता को ज्ञानशक्ति कहते हैं। इसका दूसरा नाम आमर्श है। सब आकार धारण करने की योग्यता को क्रिया शक्ति कहते हैं।

4 छत्तीस तत्व

इस दर्शन में 36 तत्व माने गए हैं। इनको तीन मुख्य भागों द्वारा समझ सकते हैं -

> (1) शिवतत्व, (2) विद्यातत्व और (3) आत्मत्व।

4.1 शिवतत्व

शिवतत्व में शिवतत्व और (2) शक्तितत्व का अंतर्भाव है। परमशिव प्रकाशविमर्शमय है। इसी प्रकाशरूप को शिव और विमर्शरूप को शक्तितत्व कहते हैं। जैसा प्रारंभ में कहा जा चुका है, पूर्ण अकृत्रिम अहं (मैं) की स्फूर्ति को विमर्श कहते हैं। यही स्फूर्ति विश्व की सृष्टि, स्थिति और संहार के रूप में प्रकट होती है। बिना विमर्श या शक्ति के शिव को अपने प्रकाश का ज्ञान नहीं होता। शिव ही जब अंत:स्थित अर्थतत्व को बाहर करने के लिये उन्मुख होता है, शक्ति कहलाता है।

4.2 विद्यातत्व

विद्यातत्व में तीन तत्वों का अंतर्भाव है :

> (3) सदाशिव, (4) ईश्वर और (5) सद्विद्या।

सदाशिव शक्ति के द्वारा शिव की चेतना अहं और इदं में विभक्त हो जाती है। परंतु पहले अहमंश स्फुट रहता है और इदमंश अस्फुट रहता है। अहंता से आच्छादित अस्फुट इदमंश की अवस्था को **सद्विद्या** या शुद्धविद्यातत्व कहते हैं। इसमें क्रिया का प्राधान्य रहता है। शिव का परामर्श है "अहं"। सदाशिव तत्व का परामर्श है "अह–मिदम्"। ईश्वरतत्व का परामर्श है "इदमहं"। शुद्धविद्यातत्व का परा–मर्श है "अहं इदं च"।

यहाँ तक "अहं" और "इद" में अभेद रहता है।

4.3 आत्म तत्व

आत्म तत्व में 31 तत्वों का अंतर्भाव है:

> (6) माया, (7) कला, (8) विद्या, (9) राग, (10) काल, (11) नियति, (12) पुरुष, (13) प्रकृति, (14) बुद्धि (15) अहंकार, (16) मन, (17-21) श्रोत्र; त्वक्, चक्षु, जिह्वी, घ्राण (पंचज्ञानेंद्रिय) (17-31) शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध (पंच तन्मात्राएँ), (32-36) आकाश, वायु, तेज (अग्नि), आप (जल), भूमि (पंचभूत)।

(6) **माया** - यह अहं और इदं को पृथक् कर देती है। यहीं से भेद-बुद्धि प्रारंभ होती है। अहमंश पुरुष हो जाता है और इदमंश प्रकृति। माया की पाँच उपाधियाँ हैह्र कला, विद्या, राग, काल और नियति। इन्हें "कंचुक" (आवरण) कहते हैं, क्योंकि ये पुरुष के स्वरूप को ढक देते है। इनके द्वारा पुरुष की शक्तियाँ संकुचित या परिमित हो जाती हैं। इन्हीं के कारण जीव परिमित प्रमाता कहलाता है। शांकर वेदांत और त्रिक्दर्शन की माया एक नहीं है। वेदांत में माया आगंतुक के रूप में है जिससे ईश्वरचैतन्य उपहित हो जाता है। इस दर्शन में माया शिव की स्वातंत्र्यशक्ति का ही विजृंभण मात्र है जिसके द्वारा वह अपने वैभव को अभिव्यक्त करता है।

(7) **कला** सर्वकर्तृत्व को संकुचित करके अनित्यत्व प्रस्थापित करता है।

(8) **विद्या** सर्वज्ञत्व को संकुचित कर किंचिज्ज्ञत्व लाती है।

(9) **राग** नित्यतृप्तित्व को संकुचित कर अनुराग लाता है।

(10) **काल** नित्यत्व को संकुचित करके अनित्यत्व प्रस्थापित करता है।

(11) **नियति** स्वातंत्र्य को संकुचित करके कार्य-कारण-संबंध प्र–स्थापित करती है।

(12) इन्हीं कंचुकों से आवृत जीव पुरुष कहलाता है।

(13) प्रकृति महततत्व से लेकर पृथ्वीतत्व तक का मूल कारण है। 14 से 36 तत्व बिलकुल सांख्य की तरह हैं।

बंध आणव मल के कारण जीव बंधन में पड़ता है। स्वातंत्र्य की हानि और स्वातंत्र्य के अज्ञान को आणव मल कहते हैं। माया के संसर्ग से उसमें मायीय मल भी आ जाता है। यही शरीर भुवनादि भिन्नता का कारण होता है। फल के लिये किए हुए धर्माधर्म कर्म और उसकी वासना से उत्पन्न हुए मल को कार्म मल कहते हैं। इन्हीं तीन मलों के कारण जीव बंधन में पड़ता है।

5 मोक्ष

अज्ञानग्रंथि के भेद और स्वशक्ति की अभिव्यक्तता को ही "मोक्ष" कहते हैं। देहादिकों में आत्माभिमान रूपी मोह की ग्रंथि है। इसका भेद कर अपने वास्तविक स्वरूप की प्रत्यभिज्ञा (पहचान) ही मोक्ष है। इस दर्शन का लक्ष्य कैवल्य नहीं है, चिदानंद या शिवत्व है। यह अकृत्रिम पूर्णाहंता का उदय होने पर ही प्राप्त हो सकता है। जब चित्त या व्यष्टि चेतना चित् या समष्टि चेतना में परिणत हो जाती है उस पूर्णाहंता का उदय होता है जो शिव की चेतना है, जिसमें सारा जगत् चिन्मय या शिवरूप हो जाने से आनंद रूप हो जाता है। कैवल्य विचार या शिवरूप हो जाने से आनंद रूप हो जाता है। कैवल्य विचार या विवेक से प्राप्त होता है। इसमें ज्ञान है किंतु कर्तृत्व नहीं, चित् चित्शक्ति नहीं। शिवत्व में चित् शक्ति के साथ वर्तमान रहता है। इसमें ज्ञान और कर्तृत्व दोनों रहते हैं। वस्तुत: इस दर्शन में ज्ञान और क्रिया में सर्वथा भेद नहीं है। क्रिया ज्ञान का ही एक रूप है।

शांकर वेदांत में ज्ञान ही मोक्ष का साधन माना गया है। प्रत्यभिज्ञा या त्रिक्दर्शन शुष्क ज्ञानमार्ग नहीं है। इसमें ज्ञान और भक्ति का मधुर सामंजस्य है। इस दर्शन के अनुसार ज्ञान होने पर परं के प्रति स्वाभाविक भक्ति उदित होती है जिसे ज्ञानोत्तरा या पराभक्ति कहते हैं। यह भक्ति साधनरूपा नहीं, किंतु साध्यरूपा है। वास्तविक चिदानंद वही है जिसमें जीवात्मा और परमात्मा का मधुर मिलन होता है, जिसमें सामरस्य का अनुभव होता है।

किंतु चिंदानंद लाभ वाक्यज्ञान या तर्क द्वारा नहीं हो सकता। यह शिव के अनुग्रह से ही सिद्ध हो सकता है। इसी अनुग्रह को शक्तिपात कहते हैं। अनुग्रह से ही गुरु मिलता है। गुरु से दीक्षा प्राप्त कर जीव साधना के द्वारा मोक्ष प्राप्त करता है।

6 उपाय

मल का क्षय करके अनुग्रह प्राप्त कर मोक्ष का अधिकारी बनने के साधन को "उपाय" कहते हैं।

7 बाहरी कड़ियाँ

- UTF-8 में शिव-सूत्र

8 पाठ और चित्र के स्रोत, योगदानकर्ता और लाइसेंस

8.1 पाठ

- **प्रत्यभिज्ञा दर्शन** *स्रोत:* https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%AA%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A4%A4%E0%A5%8D%E0%A4%AF%E0%A4%AD%E0%A4%BF%E0%A4%9C%E0%A5%8D%E0%A4%9E%E0%A4%BE_%E0%A4%A6%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%B6%E0%A4%A8?oldid=2548978 *योगदानकर्ता:* अनुनाद सिंह, Mayur, Mayurbot, VibhijainBot, Orbot1, Addbot और Sanjeev bot

8.2 चित्र

8.3 सामग्री लाइसेंस

-